अष्टोत्तरशतगुणविभूषितसमाधिस्थश्रीमद्विराग
सागर-गणाचार्यवर्यशिष्य-
श्रीमदाचार्य-विशदसागरप्रणीतः

श्रावक-क्रियासारः

(विद्वद्वरगजेन्द्रजैनकृतहिन्दीभाषान्तरसहितः)

सम्पादक
डॉ. गजेन्द्र कुमार जैन
आचार्य (आयुर्वेद, संस्कृत एवं दर्शन)
पीएच.डी. (संस्कृत एवं आयुर्वेद)

सम्पादक
श्री विशद नन्दीश्वर ध्यान केन्द्र
बाड़ा पदमपुरा, जयपुर (राजस्थान)

कृति : **श्रावक–क्रियासारः**
कृतिकार : श्रीमदाचार्य–विशदसागरः
शुभाशीष : प.पू. गणाचार्य श्री विरागसागर महाराज
करुणाशीष : प.पू. आचार्य श्री विशुद्धसागर महाराज
संकलन : मुनि श्री 108 विशालसागर जी महाराज
मुनि श्री 108 विभोरसागर जी महाराज
मुनि श्री 108 विलक्ष्यसागर जी महाराज
मुनि श्री 108 विपिनसागर जी महाराज
सम्पादक : डॉ. गजेन्द्र कुमार जैन, मो.: 9826441909
3171–ई, सुदामा नगर, इन्दौर–452009
सहयोगी : आर्यिका श्री भक्तिभारती माताजी
क्षुल्लिका श्री वात्सल्यभारती माताजी
ब्र. आस्था दीदी – 9660996425 (संघस्थ)
ब्र. प्रदीप भैया – 7568840873 (संघस्थ)
संस्करण : प्रथम, प्रतियाँ : 1000
प्राप्ति स्थान : श्री सुरेश जैन सेठी, जयपुर, मो.: 9413336017
श्री नीरज जैन, लखनऊ, मो.: 9451251308
श्री हरीश जैन, दिल्ली, मो.: 9136248971
विशद साहित्य केन्द्र, रेवाड़ी, मो.: 9416888879
प्रकाशक : श्री विशद नन्दीश्वर ध्यान केन्द्र
बाड़ा पदमपुरा, जयपुर (राज.)

पुण्यार्जक परिवार
श्रीमती चम्पा जैन धर्मपत्नी श्री कैलाशचन्द जैन
पुत्र एवं पुत्र वधू – **श्री राघवेन्द्र श्रीमती पल्लवी**
पौत्र एवं पौत्री – **जैन, युक्ती जैन**
बियाबानी, इन्दौर – 452 009 (म.प्र.)
मो.: 9926036808, 9424858753

संपादकीय

"श्रावक-क्रियासार" ग्रंथ एक ऐसा आध्यात्मिक प्रकाशस्तंभ है, जो गृहस्थ जीवन में धर्म की ज्योति जलाने का कार्य करता है। यह ग्रंथ केवल नियमों का संकलन ही नहीं, अपितु आत्मा के परिष्कार की एक सशक्त साधना है। इसमें वर्णित त्रिपञ्चाशद् क्रियाएँ, लघु-मूलगुण, व्रत, प्रतिमा, तप, दान, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि विषय श्रावक को संयम, विवेक और श्रद्धा की ओर प्रेरित करते हैं।

इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि यह जैन दर्शन के गूढ़ सिद्धांतों को अत्यंत सरल, भावनात्मक और व्यवहारिक शैली में प्रस्तुत करता है। आठ मदों का त्याग, चार अनुयोगों की समझ, सम्यग्दर्शन के आठ गुण, सम्यग्ज्ञान के आठ अंग — ये सभी विषय आत्मा को मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर करते हैं। साथ ही, मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ जैसी भावनाएँ मन को कोमल बनाकर आत्मा को निर्मल करती हैं।

संपादन के दौरान यह अनुभव हुआ कि यह ग्रंथ आज के जैन गृहस्थ के लिए एक पुनः जागरण का आह्वान है। यह केवल पठन का विषय नहीं, अपितु आत्मचिंतन, आत्मसंयम और आत्मकल्याण की दिशा में एक अमूल्य साधन है। यह ग्रंथ धर्म के बाह्य आचरण से आगे बढ़कर अंतःकरण की शुद्धि की ओर ले जाता है।

आशा है कि आचार्य श्रीविशदसागर जी की यह कृति पाठकों को आत्मनिरीक्षण, संयम और श्रद्धा की ओर प्रेरित करेगी, और उनके जीवन में धर्म, दर्शन और चारित्र की त्रिवेणी प्रवाहित करेगी।

— डा. गजेन्द्र कुमार जैन (9826441909)
3171-ई, सुदामानगर, इंदौर, म. प्र.

प्रस्तावना

यद्यपि महान महान आचार्यों ने श्रावकों के लिए मार्गदर्शन देने वाले अनेक ग्रंथ रचे हैं, परंतु प्राचीन संस्कृत-प्राकृत भाषा आज सुबोधगम्य नहीं रह गयी है। इसलिए, बहुत समय पहले यह विचार आया था कि सरल संस्कृत भाषा में एक संक्षिप्त पुस्तक श्रावकाचार की त्रेपनक्रियाओं पर लिखी जानी चाहिए। वही विचार आज मूर्तरूप ले रहा है। पिछले चातुर्मास में जो संग्रह और लेखन किया गया था, इस चातुर्मास में उसका व्यवस्थित सम्पादन डा. गजेन्द्र जैन ने कर दिया, इतना हि नहीं किन्तु हिन्दी में सरल अनुवाद भी दे दिया है। इससे यह देखने में लघुकाय ग्रंथ बहुत उपयोगी बन गया है।

श्रावक-श्रेष्ठों का यह कार्य है कि वे धर्म का प्रचार करने में और धर्म का पालन करने में तत्पर बने रहें। साधु का कार्य सिद्धांत का विवेचन करना है जो इस पुस्तक का विषय है।

श्रावक जीवन केवल सामाजिक उत्तरदायित्व नहीं, अपितु आत्मा की शुद्धि का एक सतत साधन है। **"श्रावक-क्रियासार"** ग्रंथ में वर्णित व्रत, त्याग, तप और भावनाएँ गृहस्थ को मुनि के मार्ग की ओर अग्रसर करती हैं। यह ग्रंथ न केवल नियमों का संकलन है, बल्कि भावनाओं का परिष्कार भी है।

इस ग्रंथ में वर्णित लघु-मूलगुणों का पालन, जैसे मधु, मद्य, मांस और पञ्च क्षीरी वृक्षों के फलों का त्याग, केवल बाह्य संयम नहीं, अपितु जीवदया और अहिंसा की गहराई को दर्शाता है। श्रावक के लिए यह त्याग आत्मा की कोमलता और करुणा का प्रतीक है।

आठ मदों का विवेचन : ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, धन, तप और रूप का विवेचन हमें यह सिखाता है कि अहंकार की सूक्ष्म परतें भी आत्मा को मोक्षमार्ग से दूर कर सकती हैं। इनका त्याग आत्मा को विनम्रता, समता और शुद्धता की ओर ले जाता है।

चार अनुयोगों की व्याख्या : प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग, शास्त्रों के अध्ययन की चार दिशाएँ हैं, जो साधक को ज्ञान, विवेक और आचरण की पूर्णता प्रदान करती हैं।

मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ भावनाएँ : केवल व्यवहार नहीं, अपितु आत्मा की वृत्तियाँ हैं। ये भावनाएँ श्रावक को संसार में रहते हुए भी निर्विकारी बनाए रखती हैं।

यह ग्रंथ त्याग के साथ त्रेपन क्रियाओं के पालन पर बल देता है। ये त्रेपन क्रियाएँ इस प्रकार हैं- 8 मूलगुण, 5 अणुव्रत, 3 गुणव्रत, 4 शिक्षाव्रत, 4 दान, 11 प्रतिमा 12 तप, 3 रत्नत्रय, 1 रात्रिभोजन त्याग, 1 जलगालन और 1 समता।

इसप्रकार यह ग्रंथ एक दीप है जो श्रावक के जीवन में धर्म का आलोक फैलाता है। यह आत्मा को जागरित करता है, उसे संयमित करता है, और मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर करता है। श्रावक-क्रियासार केवल एक ग्रंथ नहीं, अपितु एक जीवन-दर्शन है जो हर जैन गृहस्थ को आत्मकल्याण की ओर प्रेरित करता है।

सुदामा नगर : इंदौर — ***आचार्य विशदसागर***

वीरनिर्वाण सं. 2551-52 — *कार्तिकी अष्टाह्निका 2025*

विषयानुक्रमणिका

क्र. विषयवस्तु पृष्ठ

01. मङ्गलाचरणम् 9
02. त्रिपञ्चाशत्क्रिया 9
03. लघु अष्ट मूलगुण 10
04. अष्ट मूलगुण 11
05. मद्यपान-त्याग 11
06. मांसभक्षण-त्याग................... 11
07. मधुभक्षण-त्याग 11

पञ्चोदुम्बर फलत्याग

08. वटवृक्षफल-त्याग...................12
09. पिप्पलफल-त्याग..................12
10. उदुम्बरफल-त्याग..................12
11. काकोदुम्बरफल-त्याग............13
12. प्लक्षफल-त्याग 13

सप्त व्यसन का त्याग

13. द्यूत क्रीड़ा का त्याग..............14
14. मांसाहार का त्याग..................14
15. मद्यपान का त्याग 15
16. वेश्यादि-संग का त्याग............15
17. शिकार का त्याग....................15
18. चोरी का त्याग.......................16
19. परस्त्रीसंग का त्याग.................16
20. श्रावक के व्रतादि का नाम-निर्देश 16
21. सकलचारित्र और एकदेश चारित्र....................17

सम्यग्दर्शन का विवेचन

22. सम्यग्दर्शन का लक्षण.............18

मद आदि दोषों का परिचय

23. आठ मदों का विवेचन............18
24. ज्ञान का मद 18
25. पूजा का मद 19
26. कुल का मद 19
27. जाति का मद 19
28. बल का मद 20
29. धन का मद 20
30. तप का मद 20
31 . रूप का मद 21
32 . षड् अनायतन.......................21

तीन मूढ़ताएँ

33. देवमूढ़ता.............................22
34. लोकमूढ़ता 22
35. गुरु मूढ़ता 22

सम्यक्त्व के प्रशमादि आठ गुण

36.प्रशम 23
37.संवेग..................................23
38.अनुकम्पा 24
39. आस्तिक्य 24
40. निन्दा 24
41. गर्हा 25
42. वात्सल्य 25
43. भक्ति..................................25

क्र. विषयवस्तु पृष्ठ

मैत्री आदि चार भावनाएँ

44. मैत्री भावना 26
45. प्रमोद भावना 26
46. माध्यस्थ भावना.....................26
47. करुणा भावना........................27

सम्यग्ज्ञान का विवेचन

48. सम्यग्ज्ञान का लक्षण 27
49. सम्यग्ज्ञानाचार के आठ भेद.......27
50. शब्दाचार 28
51. अर्थाचार 28
52. उभयाचार.............................28
53. विनयाचार 28
54. कालाचार.............................28
55. अनिह्नवाचार.........................29
56. बहुमानाचार 29
57. उपधानाचार 29

चार अनुयोग

58. प्रथमानुयोग..........................29
59. करणानुयोग 30
60. चरणानुयोग...........................30
61. द्रव्यानुयोग...........................30

स्वाध्याय के पाँच भेद

62. वाचना................................31
63. पृच्छना 31
64. आम्नाय 31
65. अनुप्रेक्षा..............................32
66. धर्मोपदेश 32

क्र. विषयवस्तु पृष्ठ

सम्यक्चारित्र का विवेचन

67. सम्यक्चारित्र का स्वरूप.........32
68. मुनि का स्वरूप......................33
69. श्रावक का स्वरूप 33

श्रावक के बारह व्रत

पाँच अणुव्रत

70. अहिंसा अणुव्रत.....................34
71. सत्य अणुव्रत 34
72. अस्तेय अणुव्रत 35
73. ब्रह्मचर्य अणुव्रत 35
74. परिग्रह परिमाण अणुव्रत 35

तीन गुणव्रत

75. दिग्व्रत 36
76. देशव्रत................................36
77. अनर्थदण्डव्रत.......................36

चार शिक्षाव्रत

78. सामायिक व्रत 37
79. प्रोषधोपवास व्रत....................37
80. भोगोपभोग परिमाण व्रत 37
81. अतिथिसंविभाग व्रत..............38

चार प्रकार का दान

82. आहार दान...........................38
83. औषधि दान..........................39
84. शास्त्रोपकरण दान..................39
85. वसतिका दान.......................39

क्र. विषयवस्तु पृष्ठ

षड् आवश्यक

86. देवपूजा 40
87. गुरूपासना 40
88. स्वाध्यायः 41
89. संयम 41
90. तप 41
91. दान 42

दाता के सात गुण 42

92. श्रद्धा 42
93. सत्त्व 43
94.तुष्टि 43
95. भक्ति 43
96. क्षमा 43
97. ज्ञान 44
98. अलोभ (अलुब्धता) 44
99. श्रेष्ठ दाता 45

बारह भावनाएँ

100. अनित्य भावना 45
101. अशरण भावना 45
102. संसार भावना 46
103. एकत्व भावना 46
104. अन्यत्व भावना 46
105. अशुचि भावना 47
106. आस्रव भावना 47
107. संवर भावना 47

क्र. विषयवस्तु .... पृष्ठ

108. निर्जरा भावना 48
109. लोकस्वभाव भावना 48
110. बोधिदुर्लभ भावना 48
111. धर्म भावना 49
112. बारह भावनाओं का फल 49

ग्यारह प्रतिमाएँ

113. दर्शन प्रतिमा 50
114. व्रत प्रतिमा 50
115. सामायिक प्रतिमा 50
116. प्रोषधोपवास प्रतिमा 51
117. सचित्त त्याग प्रतिमा 51
118. रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमा 51
119. ब्रह्मचर्य प्रतिमा 52
120. आरंभ त्याग प्रतिमा 52
121. परिग्रह त्याग प्रतिमा 52
122. अनुमति त्याग प्रतिमा 53
123. उद्दिष्टत्याग प्रतिमा :
    पहला भेद 53
    दूसरा भेद 54

124. जलगालन 54
    विमर्श 54

125. समता भाव 55

126. रात्रिभुक्तित्याग
    की विशेषता 55

127. उपसंहार 56

श्रावक-क्रियासार

मङ्गलाचरणम्

केवलं वीतरागत्वं, त्रैलोक्ये महितं परम्।
वन्देऽहं तत्त्रियोगेन, विशदं शिव-सौख्यदम्।।1।।

अर्थ :- तीनों लोकों में पूज्य, श्रेष्ठ, विशद, मोक्षसुख का दाता केवल वीतरागभाव है। ऐसे वीतरागभाव की मैं तीनों योगों से वन्दना करता हूँ।

त्रिपञ्चाशत् क्रिया

भवदुःखभयाऽऽक्रान्ता, जगत्यां जीवराशयः।
सर्वदुःख-विघाताय, सौख्य-शिक्षा भवेदलम् ।।2।।
तस्माद् दुःखनिवृत्त्यर्थं, त्रिपञ्चाशद् विदुः क्रियाः।
लघुमूलगुणा अष्टौ, ध्रियन्ते वै ततोऽपि प्राक्।।3।।

अर्थ :- इस संसार की समस्त जीवराशि संसार के दुःखों के भय से आक्रान्त है। इन सभी दुःखों के नाश के लिए यह सुखकारक क्रियासार संग्रह पूर्ण समर्थ है।

जीवों को दुःखों से छूटने के लिए त्रेपन क्रियाएँ मानी गयी हैं और समझायी गयी हैं। इन त्रेपन क्रियाओं से भी पहले लघु-मूलगुण धारण किये जाते हैं।

लघु अष्ट मूलगुण

मधुनि मद्यमांसानि, पञ्च क्षीरिफलानि च ।
मङ्क्ष्वेभ्यो गृही विरमेद्, लघुमूलगुणा इति।।4।।

अर्थ :- सभी प्रकार के मधु, मद्य और मांस (तीन मकारों) और बड़, पीपल, उदुम्बर (ऊमर), काकोदुम्बर (कठूमर) और पाकर (पाँच क्षीरी वृक्षों) के फल का गृहस्थ को शीघ्र ही त्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार ये आठ लघु मूलगुण कहलाते हैं।

अष्ट मूलगुण

स परमेष्ठिनां भज्याद्, दिवाभुग् वारि गालयेत्।
उदुम्बरफलत्यागैः, ततस्त्रिपञ्चाशत् क्रियाः।।5।।

अर्थ :- गृहस्थ को चाहिए कि वह पंचोदुम्बर फलों के त्यागपूर्वक पाँच परमेष्ठियों की पूजा करे, दिवाभोजन करे (रात्रि भोजन का त्याग करे) और पानी छान कर पिये (प्रकारान्तर से ये भी मूलगुण हैं)। इसके बाद ही गृहस्थों के लिए 53 प्रमुख क्रियाओं का उपदेश किया गया है।

अष्ट मूलगुण

1. मद्यपान-त्याग

मद्यपानं महापापं, श्रावको भवभीतिमान् ।
तद्-गन्धेऽपि मनो नास्ति, मद्यं च ततः त्यजेत्।।6।।

अर्थ :- मद्यपान महापाप है। श्रावक तो सारे संसार से ही भयभीत रहता है। वह तो मद्य की गन्ध से भी दूर रहता है। उसका मन मद्य की गन्ध भी सहन नहीं करता। मद्य को तो दूर से ही त्याग देना चाहिए।

2. मांसभक्षण-त्याग

मांसस्य दर्शने दुःखं, भक्षणे प्राणनिर्गमः।
त्यजति मासं तत् तस्मात् , प्राणिरक्षण-हेतवे।।7।।

अर्थ :- मांस के देखने में दुःख होता है, मांस भक्षण में तो प्राणघात का दोष होता है। इस कारण से प्राणियों की रक्षा के लिए श्रावक तो सदा के लिए ही मांस का त्याग कर देता है।

3. मधुभक्षण-त्याग

त्रसजीव-वधोत्पनं, मधु जीवशताकुलम्।
तस्य त्यागस्ततो येन, स हि दयालुमानवः।।8।।

अर्थ :- त्रस जीवों के घात से उत्पन्न मधु सैकड़ों जीवों से भरा हुआ होता है। दयालु मनुष्य वही है जिसने मधु का त्याग कर दिया है।

4. पञ्चोदुम्बर फलत्याग

1. वटवृक्षफल-त्याग

न्याग्रोधवृक्षसंभूतं, फलं जन्तुसमाकुलम्।
तत्फले यो निराकांक्षी, जीवरक्षाप्रयोजकः।।9।।

अर्थ :- जीवरक्षा के प्रयोजन वाला जीव (श्रावक) बड़ के वृक्ष से उत्पन्न जन्तुओं से भरे फल में सदा ही अनिच्छा रखता है, अर्थात् नहीं खाता।

2. पिप्पलफल-त्याग

काकयोग्यं कलाहीनं, अश्वत्थस्य फलोज्झनम्।
कृतं येन दयाबुद्ध्या, त्यागश्च जीवरक्षणे ।।10।।

अर्थ :- जीवरक्षा के लिए जिसने दयाबुद्धि से गुणहीन और काकपक्षी के भक्षणीय पीपल आदि के फल का त्याग किया हो, वही त्याग है।

3. उदुम्बरफल (ऊमर) त्याग

त्रसजीवशतैर्युक्तं उदुम्बरफलवर्जनम्।
कृता जीवदया रक्षा, हिंसानिवृत्तिकारणे।।11।।

अर्थ :- सैकड़ों त्रस जीवों से युक्त उदुम्बर (पञ्चोदुम्बर फलों में पहले)फल का त्याग करना अर्थात् जीवदया (जीवरक्षा) करना। यह हिंसा से निवृत्ति में उपादान और निमित्त (दो प्रकार का) कारण है। उदुम्बर जाति के वृक्षों के फल अंजीर आदि त्याग योग्य हैं।

4. काकोदुम्बर (कठूमर) फल का त्याग

बहुक्रमिसमाकीर्णं, निन्द्यं काकोदुम्बरम्।
तस्याहारविनिर्मुक्तं, ज्ञानातीतः त्यजेत्ततः।।12।।

अर्थ :- असंख्य कृमियों से व्याप्त काकोदुम्बर (कठगूलर जिसे काकोदुम्बर - Red Wood भी कहते हैं) अत्यन्त निन्दनीय है। यह लोक में अंजीर नाम से प्रसिद्ध है। इसके भक्षणदोष से दूर होने के लिए ज्ञान की सीमा से दूर अनिर्वचनीय जीव ऐसे फल का त्याग कर देते हैं।

4. प्लक्ष (पाकर) फलत्याग

सर्वजीव-दयाऽऽधारो, निष्कषायश्च प्राणिनाम्।
प्लक्ष-फलस्य संत्यागी, तदहिंसा-रक्षाव्रतम्।।13।।

अर्थ :- प्राणियों के प्रति कषायरहित जीव सभी प्राणियों के प्रति दया का आधार होता है, वह प्लक्ष (पिलख Ficus microcorpa या Ficus infectoria) के

फल का त्यागी होता है। प्राणियों की रक्षा के लिए ही तो अहिंसा व्रत होता है।

सप्तव्यसन का त्याग

1. द्यूत-क्रीडा का त्याग

जये पराजये हेतु- रक्षान् दीव्यन्ति ये नराः ।
कुकीर्तिं द्रव्यनाशं च, लब्ध्वा श्वभ्रे पतन्ति ते।।14।।

अर्थ :- जो हार-जीत वाले पाँशों से खेले जाने वाले जुआ खेलते हैं, वे इस लोक में कुकीर्ति अर्थात् अपयश पाते हैं, द्रव्यनाश पाते हुए परलोक में नरक में जा पड़ते हैं।

2. मांसाहार का त्याग

यस्याऽऽमिषं हि यो दुष्टो, भुङ्क्ते तस्य पले स वै।
भूत्वा भुज्यते जन्तुस्- तस्मात्त्वं त्यज पापदम्।।15।।

अर्थ :- जो दुष्ट किसी के मांस को खाता है वह उसी के मांस में उत्पन्न होकर पाप का फल भोगता है। अतः ऐसे पापजनक मांसभक्षण का त्याग करो।

3. मद्यपान का त्याग

विवेक विकलं कृत्वा, पीतं 'मद्यं' कुजन्मदम्।
पापं हिंसाऽन्यरागादि - कृत्वा श्वभ्राधिपो भवेत्।।16।।

अर्थ :- मद्यपान बुरी योनि में पैदा कराता है। वह विवेक हीन बनकर हिंसा और परवस्तु में राग आदि पैदा करके नरक का अधिकारी बनाता है।

4. वेश्यादि-संग का त्याग

नराः कुलीना वेश्यादि-संगं कुर्वन्ति येऽधमाः।
श्वभ्रे लोहाग्निसमाभि स्तेषामालिंगनं भवेत्।।17।।

अर्थ :- कुलीन मनुष्य होकर भी जो पापी वेश्या आदि का सहवास करते हैं, उनके नरक में (जाने पर) लोहमय-अग्नि से बनी हुई स्त्री का आलिंगन होता है।

5. शिकार का त्याग

कण्टक-स्पर्शमात्रेऽपि, किञ्चिद् दुःखं यद्भवेत्।
हन्ति शस्त्रेण जीवादीन्, कथं श्वभ्राधिपो न सः।।18।।

अर्थ :- जब तिनका मात्र के स्पर्श से जीव को दुःख होता है, (तब सोचो) जो जीव को शस्त्र से मारता है वह नरक का अधिकारी क्यों नहीं होगा, अवश्य होगा।

6. चोरी का त्याग

परद्रव्यापहारेण, लभ्यते वध-बन्धनम्।
घोरदुःखमिहामुत्र, परस्वं त्यज सर्पवत्।।19।।

अर्थ :- दूसरे के द्रव्य का अपहरण करने से इस लोक में वध और बन्धन प्राप्त होता है और परलोक में भी घोर दुःख मिलता है, अतः परद्रव्य को तो विषधर मानकर छोड़ देना चाहिए।

7. परस्त्रीसंग का त्याग

परस्त्रीसंग आसक्ता, येऽधमा नष्टबुद्धयः।
वध-बन्धादिकं प्राप्य, नरके यान्ति सप्तमे।।20।।

अर्थ :- बुद्धिहीन, पापी जो व्यक्ति परस्त्री के संग में आसक्त होते हैं, वे यहाँ वध-बन्धादि फल पाकर सातवें नरक में जाते हैं।

श्रावक की त्रेपन क्रिया नाम—निर्देश

सद्-दृष्टिज्ञानवृत्तानि, समं मूलगुणैरथो।
द्वादशाहुर्व्रतान्येका- दश च प्रतिमा मताः।।21।।
तपः सद्वादशभेदं, दानं च स्याच्चतुर्विधम्।
दिवा-भुक्तिः समत्वं च, जलगालनमथापि च।।22।।

अर्थ :- श्रावक के आठ मूल गुणों के साथ-साथ, गृहस्थों के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, बारह व्रत और 11 प्रतिमाएँ मानी गई हैं। बारह तप, चार दान, दिवा-भुक्ति, समता, जलगालन, ये त्रेपन क्रियाएँ हैं।

श्रावकों के लिए त्रेपन क्रियाओं का रयणसार आदि ग्रंथों में विधान है। इसमें 8 मूलगुण, 1 रात्रिभोजन त्याग, 1 जलगालन, 1 समता, 12 व्रत (5 अणुव्रत, 3 गुणव्रत, 4 शिक्षाव्रत), 4 दान, 11 प्रतिमा 12 तप और 3 रत्नत्रय, -इस प्रकार, त्रेपन क्रियाओं के त्रेपन व्रत किए जाते हैं। इनके व्रत की विधि व्रत-तिथि-निर्णय में कही गई है।

सकलचारित्र और एकदेश चारित्र

सच्चारित्रं द्विधाज्ञेयं, सकलञ्चैकदेशतः।
धारयेत् सकलं साधुः, श्रावकश्चैकदेशकम।।23।।

अर्थ :- सम्यक् चारित्र दो प्रकार का है - सकल चारित्र और एकदेश चारित्र। सकलचारित्र को मुनि और एकदेश चारित्र को श्रावक धारण करते हैं।

सम्यग्दर्शन का विवेचन

सम्यग्दर्शन का लक्षण

मैत्र्यादिभावनाश्चैव, प्रशमादिगुणैर्युताः।
शङ्कादिदोषै रहिताः, तत्त्वश्रद्धाः सुदर्शनाः।।24।।

अर्थ :- मैत्री आदि भावनाएँ, प्रशम आदि गुणों से युक्त और शंका आदि दोषों से रहित तत्त्वों पर श्रद्धा सम्यग्दर्शन

है। त्रेपन क्रियाओं में रत्नत्रय श्रेष्ठ है, और रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन प्रधान है।

मद आदि दोषों का परिचय

आठ मदों का विवेचन

1. ज्ञान का मद

शास्त्र-ज्ञानधरो मूढ़ो, ज्ञानाहंकार-पूरितः।
तद्भाव-रहितो ज्ञानी, मोक्षमार्ग-परायणः ।।25।।

अर्थ :- शास्त्र-ज्ञान का धारक होकर भी ज्ञान के अहंकार से भरा हुआ जीव मूढ़ ही है। ऐसे ज्ञान-मद के भाव से रहित जीव ज्ञानी होता है, वह मोक्षमार्ग पर बढ़ने वाला होता है।

2. पूजा का मद

अर्चामद-विनाशाय, स्वगौरव-विवर्जितम्।
स्वात्मतत्त्व-विलीनं हि, मोक्षमार्गपरायणः ।।26।।

अर्थ :- अपने गौरव (अहंकार) से रहित होना पूजा के मद का नाश करता है। ऐसा जीव स्वात्मतत्त्व में लीन और मोक्षमार्ग पर बढ़ने वाला होता है।

3. कुल का मद

उच्चैस्तर-कुले जन्म, तस्याहंकार-वर्जितः।
धर्मानुष्ठान-संलीनः, मोक्षमार्ग-परायणः ।।27।।

अर्थ :- ऊँचे कुल में जन्म होने का अहंकार कुल का मद है। कुल के मद से रहित धर्माचरण में लीन जीव मोक्षमार्ग पर बढ़ने वाला होता है।

4. जाति का मद

जाति-मदान्तगः शान्तः, सुजातौ जात उल्वणः।
दर्शन-ज्ञान-सम्पन्नो, मोक्षमार्ग-परायणः ।।28।।

अर्थ :- जाति के मद से पार पा चुका जीव शान्त होता है। अच्छी जाति में उत्पन्न जीव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से सम्पन्न होने पर श्रेष्ठ होता है, वह मोक्षमार्ग पर बढ़ने वाला होता है।

5. बल का मद

शरीरादौ बलं तस्य, तेन गर्वेण पूरितः।
तद्गर्वरहितः साधुः, मोक्षमार्ग-परायणः ।।29।।

अर्थ :- शरीर आदि में बल होने पर उसके गर्व से बल का मद होता है।

बल मद से रहित जीव सज्जन होता है। वह मोक्षमार्ग पर बढ़ने वाला होता है।

6. धन का मद

रत्नहेम-पदार्था ये, संसारे लोभ-कारणम्।
तत्पापाद्रहितो दक्षः, मोक्षमार्ग-परायणः ।।30।।

अर्थ :- रत्न, स्वर्ण आदि जो पदार्थ हैं, वे संसार में लोभ के बढ़ाने में कारण हैं। इससे धन का मद होता है।

इस धन-मदरूप पाप से रहित जीव वह मोक्षमार्ग पर बढ़ने वाला होता है।

7. तप का मद

मास-पक्षोपवासादि, तपः कुर्वन्ति साधवः।
तपो-गर्वाद् विनिर्मुक्तो, मोक्षमार्ग-परायणः ।।31।।

अर्थ :- सज्जन मासोपवास, पक्षोपवास आदि तप करते हैं, परन्तु तप का गर्व नहीं करते।

जीव जो तप-मद से मुक्त हो, वह मोक्षमार्ग पर बढ़ने वाला होता है।

8. रूप का मद

कामदेव-समं रूपं, कामदं काम-दायकम्।
काय-क्लेशात् कृशीभूतो, मोक्षमार्ग-परायणः ।।32।।

अर्थ :- इच्छित सुखदायक, कामदेव के समान रूप होने पर मद नहीं करना चाहिए।

जीव रूप-मद से रहित होकर काय-क्लेश से कृश हो जाता है, ऐसे रूप-मद से रहित जीव वह मोक्षमार्ग पर बढ़ने वाला होता है।

षड् अनायतन

आराधनं कुदेवस्य, कुशास्त्रस्य कुलिङ्गिनः।
षडनायतनानि स्युस्- तेषा-माराधकैः सह।।33।।

अर्थ :- कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु और इनकी सेवा करने वाले -इस प्रकार छह अनायतन हैं।

नामतः छह अनायतन इस प्रकार से हैं-कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु, कुदेवसेवक, कुशास्त्रसेवक और कुगुरुसेवक।

तीन मूढ़ताएँ

1. देवमूढ़ता

रागद्वेष-समायुक्ता, निर्घृणाः सर्व-देवताः।
तासा-मुपासना-माहुः, सूरयो देव-मूढ़ताम्।।34।।

अर्थ :- राग-द्वेषयुक्त, क्रूर -ऐसे सभी देवताओं की उपासना को आचार्यों ने देवमूढ़ता कहा है।

2. लोकमूढ़ता

ग्रहण-स्नान-सूर्यार्घा, गोपृष्ठ-मूत्रवन्दनम्।
दत्तिर्देहलि-पिण्डादेः, कथ्यते लोक-मूढ़ता।।35।।

अर्थ :- ग्रहण में स्नान, सूर्य का अर्घ, गोपृष्ठ-गोमूत्र की वन्दना, देहलि-पिण्डादि का दान लोकमूढ़ता कही जाती है।

3. गुरु-मूढ़ता

सग्रन्थारम्भ-युक्ता ये, मन्त्रौषधि-विशेषकाः।
ये तु कुर्वन्ति शुश्रूषां, ते पाखण्ड-विमूढ़काः।।36।।

अर्थ :- परिग्रह और आरम्भ से युक्त, मन्त्र-औषधि आदि के विशेषज्ञ जो गुरु हैं, उनकी सेवा करना पाखण्ड-मूढ़ता (गुरु-मूढ़ता) है।

सम्यक्त्व के प्रशमादि आठ गुण

प्रशमश्च संवेगश्चा-ऽनुकम्पाऽऽस्तिक्यनिन्दने।
गर्हा वात्सल्यं भक्ति-रष्टौ सम्यक्त्विनां गुणाः।37।।

अर्थ :- दोषरहित सम्यक्त्व (सम्यक्त्वी) के आठ गुण हैं- 1.प्रशम 2.संवेग 3.अनुकम्पा 4.आस्तिक्य 5.निन्दा 6.गर्हा 7.वात्सल्य और 8. भक्ति।

प्रशमगुण

यद्रागादिषु दोषेषु, चित्तवृत्तिनिवर्हणम्।
तं प्राहुः प्रशमं प्राज्ञाः, समस्तव्रतभूषणम्।।38।।

अर्थ :- राग-द्वेष आदि दोषों में चित्तवृत्ति की जो निवृत्ति है, उसे विद्वज्जन सभी व्रतों का आभूषण रूप प्रशम गुण कहते हैं। कहीं-कहीं पर इसे ही 'उपशम' शब्द से भी कहा गया है।

संवेग

रोगाः प्रज्ञापराधेभ्य, आगन्तु-तनु-मानसाः।
इन्द्रेषु-स्वप्नवद् भोगाः, तद्धीः संवेग उच्यते।।39।।

अर्थ :- प्रज्ञा-जन्य अपराधों से शारीरिक, मानसिक और आगन्तुक रोग होते हैं। इन्द्रधनुष और स्वप्न के समान भोगों से भयभीत रहना संवेग कहलाता है।

अनुकम्पा

सर्वे सर्वत्र चितस्य, दयार्द्रत्वाद् दयालवः।
धर्मस्य चरणं मूल- मनुकम्पां प्रचक्षते।।40।।

अर्थ :- सभी प्राणियों में चित्त की दयार्द्रता से श्रावक दयालु होते हैं। धर्म का आचरण रूप अनुकम्पा तो धर्म का मूल है।

आस्तिक्य

आप्ते श्रुते व्रते तत्त्वे, मनोनुरक्तिः संस्तुता।
आस्तिक्यमास्तिकैरुक्तं, मुक्ति-युक्तिधरैर्नृभिः।।41।।

अर्थ :- आप्त, श्रुत, व्रत और तत्त्व के विषयों में मन की अनुरक्ति प्रशंसा योग्य मानी गई है। इस भाव को मुक्ति के उपाय करने वाले सज्जन (आस्तिक) लोग आस्तिक्य कहते हैं।

निन्दा

स्वदोषोद्भावनं यत्तत्, कथ्यते निन्दनं बुधैः।
सम्यक्त्वगुण-सयुक्तः, स पान्थो मोक्षपद्धतेः।।42।।

अर्थ :- जो अपने दोषों को प्रकट करता है वह स्वनिन्दा है। विद्वान् जन ऐसा कहते हैं। सम्यक्त्वगुण से युक्त वह जीव मोक्षमार्ग का पथिक है।

गर्हा गुण

आलोचना गुरोरग्रे, क्रियते या बुधोत्तमैः।
गर्हागुण-समेतास्ते, सम्यक्त्व-गुण-धारकाः।।43।।

अर्थ :- गुरु के आगे तो श्रेष्ठ बुद्धिमानों द्वारा आलोचना की जाती है, वे आलोचना करने वाले गर्हा गुण से युक्त जन सम्यक्त्व के धारक होते हैं।

वात्सल्य

सद्भावं हि सधर्माणा- मात्मीयत्वं च प्रकाश्यते।
विपदि साहाय्यं कुर्याद्, अदः वात्सल्यमीरितम्।44।।

अर्थ:- जो सम्यग्दृष्टि जीव अपने समान सम्यग्दृष्टियों के प्रति सद्भाव, अपनत्व और सहयोग की भावना प्रकट करते हैं, उनके वात्सल्य अंग कहलाता है।

भक्ति

जिने जिनागमे सूरौ, तपःश्रुतपरायणाः।
सद्भावशुद्धसम्पन्नो-ऽनुरागो भक्तिरिष्यते।।45।।

अर्थ :- जिनेन्द्र देव, जिनागम, जिनलिङ्गी मुनि के विषय में, तपधारी श्रुतसेवक जीव (गृहस्थ श्रावक को) की सद्भाव से शुद्ध और सम्पन्न अनुरागयुक्त भक्ति करनी चाहिए।

मैत्री आदि चार भावनाएँ

1. मैत्री भावना

कायेन मनसा वाचा, सर्वेष्वपि च देहिषु।
अदुःखजननीवृत्तिर्- मैत्री श्रुतविदां मता।।46।।

अर्थ :- शास्त्रज्ञों ने मन-वचन-काय से सभी जीवों के प्रति सुख-जनकवृत्ति को मैत्री कहा है।

2. प्रमोद भावना

तपो-गुणाधिके पुंसि, प्रश्रयाश्रय-निर्भरः।
जायमानो मनोरागः, प्रमोदो विदुषां मतः।।47।।

अर्थ :- जीव में तप की अधिकता से गुणाधिक होने पर उसकी शरण का आश्रय लेने का जो मनोराग होता है वह प्रमोद कहा गया है, ऐसा विद्वानों का मत है।

3. माध्यस्थ भावना

कर्मागमे जने शत्रौ, रागद्वेष-मदान्वितः।
मानं क्रोधादिकं त्यक्त्वा, माध्यस्थं भज मुक्तये।।48।।

अर्थ :- राग-द्वेष और मद से भरे हुए शत्रु जीव के प्रति स्वयं के कर्मोदय आने पर मान-क्रोध आदि त्याग कर माध्यस्थ भाव धारण करना चाहिए। (मुनि के लिए माध्यस्थ श्रेष्ठ है)

4. करुणा भावना

पर दुःखे स्वभाव वद्, साहाय्यस्य च प्रेरणा।
चित्तवृत्ति-रिति ख्याता, करुणा मोक्ष-गामिभिः।।49।।

अर्थ :- दूसरे के दुःख में अपने जैसा मानने का भाव अर्थात् सहानुभूति, और उसे सहायता देने की प्रेरणा की जो चित्तवृत्ति है, उसे मोक्षमार्ग के पथिक साधुओं ने करुणा कहा है।

सम्यग्ज्ञान का विवेचन

सम्यग्ज्ञान का लक्षण

संशया दोषं रहितं, अष्टाङ्गैः संयुतं तथा।
वाचनादि पंच भेदाः, सम्यग्ज्ञानं मनोहरम्।।50।।

अर्थ :- संशय आदि दोषों से रहित, आठ अंगों से सहित वाचना आदि पाँच भेदों से सहित सम्यग्ज्ञान अत्यन्त सुन्दर है।

सम्यग्ज्ञानाचार के आठ भेद

शब्दार्थावुभयाचाराः, विनयकालानिह्नवाः।
बहुमानोपधानं च, ज्ञानाचारस्तु सोऽष्टधा ।।51।।

अर्थ :- शब्द, अर्थ, तदुभय, विनय, काल, अनिह्नव, उपधान, बहुमान -ये ज्ञानाचार के आठ भेद हैं।

शास्त्र शब्दाक्षरौचैव, स्वर सन्धि तथैव च।
शुद्धोच्चारणं कुर्यात्, शब्दाचाराःविधीयते।।52।।

शब्दाचारः **मूलग्रंथ** के शब्दों, स्वरों और मात्राओं का शुद्ध उच्चारण करके पढ़ना **शब्दाचार है ।**

सम्यक्शास्त्रानुसारेण, योग्यं अर्थं करोति यः।
विशुद्ध भाव संयुक्तं, अर्थाचारो विधीयते।।53।।

अर्थाचारः **शत्शास्त्र** केवल पाठ न करके, शास्त्र के अर्थ को समझकर पढ़ना **अर्थाचार है ।**

शब्दानुसारं क्रियते, भावार्थो उच्चारणस्तथा।
उभयाचार नामानि, कथ्यते जिन पुंगवैः।।54।।

उभयाचारः अर्थ समझते हुए शुद्ध उच्चारण के साथ पढ़ना **उभयाचार है।**

द्रव्य क्षेत्र सुकालादै, योगेन शुद्धि पूर्वकम्।
विनयपूर्वकं शास्त्रं, अभ्यासं क्रियते बुधैः।।55।।

विनयाचारः द्रव्य, क्षेत्र आदि की शुद्धि के साथ विनयपूर्वक शास्त्रों का अभ्यास करना **विनयाचार है।**

स्वाध्याय सुयोग्यं कालं, श्रुताभ्यास क्रियान्वयं।
अयोग्य कालं रहितं, कालाचारं विकथ्यते।।56।।

कालाचारः शास्त्रों को केवल योग्य काल में ही पढ़ना, जैसे कि अशुभ समय (संध्या- काल, ग्रहण आदि) में नहीं पढ़ना **कालाचार है ।**

यं शास्त्रमुपाध्यायश्च, **करोति ज्ञान धारणं।**

अनिह्नवाचारं–मेवं, न कुरुत्युपगूहनं।।57।।

अनिह्नवाचार: जिस शास्त्र या गुरु से ज्ञान प्राप्त किया है, उसका नाम और महिमा न छिपाना अनिह्वाचार कहा गया है।

श्रुत पीठशास्त्रं एवं, गुरवाचार्यादिस्तथा।

यथायोग्यं सुसम्मानं, बहुमानाचारी क्रिया।।58।।

बहुमानाचार: ज्ञान के उपकरणों और गुरुजनों का यथा योग्य सम्मान करना बहुमानाचारी क्रिया है ।

सु शास्त्रपाठनकाले, जनोपधानं च कुरु।

उपधानाचारं मूलं, कथयति सद् ज्ञानिना।।59।।

उपधानाचार: शास्त्र के मूल और अर्थ को बार-बार पुनरावर्तन/स्मरण करके धारण करना उपधाना।

चार अनुयोग

1. प्रथमानुयोग

संगृह्णाति स्व-सिद्धातं, साधुर्बोधति धर्म-धीः।

प्रथमः सोऽनुयोगः स्यात्, पुराण-चरितादि-युक्।।60।।

अर्थ :- साधु अपने सिद्धान्त को जानता-समझता है और बुद्धि में धर्म धारण करता है। पुराण और पुराणपुरुषों के चरित आदि से युक्त प्रथमानुयोग कहलाता है

(इसके ज्ञान से साधु और श्रावक अपने सिद्धान्त का ज्ञान कर लेता है)।

2. करणानुयोग

अधो-मध्योर्ध्व-लोकेषु, चतुर्गति-विचारणम्।
शास्त्रं करण-मित्याहु- रनुयोग-परीक्षणम् ।।61।।

अर्थ :- अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक में चारगतियों का विचार करना -ऐसा शास्त्र करणानुयोग है। ऐसा अनुयोगज्ञ कहते हैं।

3. चरणानुयोग

ममेदं स्यादनुष्ठानं, तस्यायं रक्षण-क्रमः।
इत्थमात्म-चारित्रार्थे- ऽनुयोगश्चरणाभिधः।।62।।

अर्थ :- मुझे इस व्रतादि का अनुष्ठान करना चाहिए और इस व्रत आदि के पालन की यह विधि है। आत्मा के चारित्र के विषय में इसप्रकार का अनुयोग चरणानुयोग कहा गया है।

4. द्रव्यानुयोग

जीवाजीव-परिज्ञानं, धर्माधर्माव-बोधनम्।
बन्ध-मोक्षज्ञता चेति, फलं द्रव्यानुयोगतः।।63।।

अर्थ :- जीव-अजीव, धर्म-अधर्म, बन्ध-मोक्ष का ज्ञान द्रव्यानुयोग से उत्पन्न होने वाला परिणाम है।

स्वाध्याय के पाँच भेद

1. वाचना

जिनेन्द्रैः कथितं शास्त्रं, सप्ततत्त्व-प्रकाशकम्।
सवाक्यार्थं ससंदर्भं, ब्रूयात् तुच्छं तु संत्यजेत्।।64।।

अर्थ :- जिनेन्द्र भगवन्तों द्वारा कहा गया शास्त्र सात तत्त्वों का प्रकाशक होता है। उसे वाक्यार्थ और सन्दर्भ के साथ बताना चाहिए और अर्थहीन बातें छोड़ना चाहिए (अर्थहीन बातें अपलाप त्यागना चाहिए)।

2. पृच्छना

गुरूणां गुणयुक्तानां, विधेयो विनयो महान्।
सन्देहहानये व्यक्ता, गुरुपार्श्वे हि पृच्छना ।।65।।

अर्थ :- गुरुजन गुणी होते हैं, उनकी अत्यन्त विनय करनी चाहिए। क्योंकि गुरु के पास ही सन्देह दूर करने के लिए स्पष्ट प्रश्न पूछा जा सकता है, यह पृच्छना है।

3. आम्नाय

विशदज्ञानवृद्ध्यर्थं, सूत्रवाक्यप्रधानताः।
आम्नायः शुद्धसंघोषो, सुधीभिः क्रियते वरम् ।।66।।

अर्थ :- विशद ज्ञान की वृद्धि के लिए सूत्रवाक्यों की प्रधानता होती है। इन सूत्रवाक्यों का शुद्ध उच्चारण (और पुनरावर्तन) जिज्ञासु को करना चाहिए। यह आम्नाय नामक स्वाध्याय भेद है।

4. अनुप्रेक्षा

द्रव्य-तत्त्व-पदार्थाना-मनुचिन्तनं मुहुर्मुहुः।
विज्ञेया सा ह्यनुप्रेक्षा, ज्ञान-वैराग्य-कारिणी।।67।।

अर्थ :- द्रव्यादि तत्त्व प्रयोजनभूत तत्त्व हैं। इनका बार-बार अनुचिन्तन अनुप्रेक्षा जाननी चाहिए। यह अनुप्रेक्षा ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न करती है।

5. धर्मोपदेश

तत्त्वज्ञानागमाभ्यासी, यः स्वपरोपकारकः।
मुक्तिपथप्रणेता च, महाधर्मोपदेशकाः।।68।।

अर्थ :- तत्त्वज्ञान और आगम का अभ्यास करने वाला स्व-परहित का कर्ता और मुक्तिपथ पर ले जाने वाला महान धर्मोपदेशक होता है। इस प्रकार, धर्मोपदेश नामक स्वाध्याय भेद होता है।

सम्यक्चारित्र का विवेचन

सम्यक्चारित्र का स्वरूप

सद्-दृष्टिज्ञानलाभात् सन्, कृत्याकृत्यविचक्षणः।
राग-द्वेष-निवृत्त्यर्थं, चारित्र-मधिगच्छति।। 69 ।।

अर्थ :- सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान प्राप्ति के बाद करणीय और अकरणीय के विवेक में चतुर सज्जन पुरुष चारित्र की ओर उन्मुख होता है।

मुनि का स्वरूप

विषयाशाविहीना ये, सर्वा रम्भपरिग्रहाः।
ज्ञान-ध्यान-तपोरक्ताः, मोक्षमार्गे च साधवः।।70।।

अर्थ :- सकल चारित्र के धारक मुनि समस्त विषयों के प्रति उदासीन, सम्पूर्ण (बाह्य और अंतरङ्ग) परिग्रह से रहित और मोक्षमार्ग में ज्ञान-ध्यान और तप में लीन रहते हैं।

श्रावक का स्वरूप

व्यसनत्यग् दिवाभुक्च, मूलगुणांश्च धारयन्।
व्रतदानतपोयुक्तः, श्रावको प्रतिमाधरः।।71।।

अर्थ :- व्यसनों का त्यागी, दिवाभोजी, मूलगुण धारण करने वाला, व्रतों, दानों और तपों से युक्त श्रावक होता है।

वह प्रतिमाओं को धारण करने तक श्रावक नाम पाता है।

श्रावक के बारह व्रत

महाव्रतैकदेशानि, पंचाणूनि व्रतानि च।
त्रीणि गुणव्रतान्याहुः, शिक्षाव्रतचतुष्टयम्।।72।।

अर्थ :- महाव्रतों के एकदेश पाँच अणुव्रत श्रावक के होते हैं, और 3 गुणाव्रतों के साथ चार (4) शिक्षाव्रत होते हैं।

पाँच अणुव्रत

1. अहिंसा

न हिनस्ति त्रसाञ्जीवान्, फल्गु स्थावरप्राणिनः।
त्रियोगे करुणाभावाः, प्रोक्त-महिंसाव्रतम्।।73।।

अर्थ :- त्रस जीवों की हिंसा का सर्वथा त्याग और व्यर्थ में स्थावरजीवों का त्याग करना तीनों योगों से करुणाभाव होना यह अहिसा व्रत है।

2. सत्य

यथार्थतो वै वस्तूनां, कथनमेकदेशतः।
तं सत्याणुव्रतं ज्ञेयं, कथितं परमेश्वरैः।।74।।

अर्थ :- तत्त्व के बारे में एकदेश सत्य कहना सत्याणुव्रत है। ऐसा जिनेन्द्र भगवन्तों ने कहा है।

3. अचौर्य

नाज्ञां विना तु कस्यापि, परद्रव्यं स्वीक्रियान्नरः।
अस्तेय-मिह तत्प्रोक्तं, तच्चाप्यचौर्य-सुव्रतम्।।75।।

अर्थः- आज्ञा/अनुमति के बिना किसी के द्रव्य (धन आदि) के आहरण (आदान) से निवृत्त होने को अस्तेय कहा है, वह अचौर्यव्रत उत्कृष्ट व्रत है।

4. ब्रह्मचर्य

कामात्परस्त्रीगमने, विकारेन्द्रियवर्जनम्।
तद्ब्रह्मचर्याणुतपस्, सद्गृही परिपालयेत्।।76।।

अर्थ :- कामभाव के कारण परस्त्रीगमन/वेश्यागमन आदि के विषय में विकार से इन्द्रियों को रोकना ब्रह्मचर्य नामक अणुव्रत तप है सद्गृहस्थ को इसका पालन करना चाहिए।

5. परिग्रह परिमाण

परिग्रहे तु क्षेत्रादि- सीम्नः प्रकुरुते जनः|
स्वल्पावश्यकताः पूर्याद्, ज्ञेयोऽपरिग्रही हि सः।।77।।

अर्थ :- जो श्रावक परिग्रह के विषय में खेत आदि की सीमा निर्धारित कर लेता है, अल्प आवश्यकता की पूर्ति करता है, उसे अपरिग्रही कहा जाता है। यह परिग्रह परिमाण अणुव्रत है।

तीन गुणव्रत

1. दिग्व्रत

दशसु दिक्षु सीमानां, यत् संरुध्यावज्जीवनम्।
जानीयाद् दिग्व्रतं तत्तु, गुणव्रतं जिनागमे।।78।।

अर्थ :- दशों दिशाओं में सीमाओं का आजीवन निरोध करना -यह जैनागम में दिग्व्रत नाम का प्रथम गुणव्रत कहा गया है।

2. देशव्रत

पूर्वोक्त-दिग्व्रत-सीम्नां, देशे कालप्रमाणतः ।
ग्राम-गृह-प्रतोल्यादि- सीम्नां देशव्रतं तथा।।79।।

अर्थ :- पूर्वोक्त दिग्व्रत में कही गई सीमाओं में से भी देश-काल के अन्तर्गत ग्राम, गृह, गली आदि की सीमा करना देशव्रत नामक दूसरा गुणव्रत है।

3. अनर्थदण्डव्रत

पापोपदेशहिंसा दत्-त्ती अपध्यान-दुःश्रुती।
प्रमादचर्या हीयन्ते- ऽनर्थदण्डव्रते रतैः।।80।।

अर्थ :- पापोपदेश और हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति और प्रमादचर्या -इनका त्याग करने वालों के द्वारा अनर्थ दण्डव्रत धारण किया जाता है। यह तीसरा गुणव्रत है।

चार शिक्षाव्रत

1. सामायिक

रागद्वेषौ परित्यज्य, साम्यं मनसि धारयेत्।
सुखे दुखे भवेत् साम्यं, सामायिकं शिक्षाव्रतम्।।81।।

अर्थ :- राग-द्वेष का परित्याग करके मन में समता धारण करे। सुख और दुःख, दोनों में ही समता हो जाये -इस व्रत का नाम सामायिक व्रत है। यह पहला शिक्षाव्रत है।

2. प्रोषधोपवास

अष्टम्यां च चतुर्दश्या- मुपवासः सप्रोषधः।
संयुक्तरूपे क्रियते, प्रोषधोपवासो हि सः।।82।।

अर्थ :- महीने के चार पर्वों में अर्थात् दो अष्टमी और दो चतुर्दशी तिथियों में प्रोषध के साथ संयुक्त रूप से उपवास किया जाता है, उसे प्रोषधोपवास कहा जाता है। यह दूसरा शिक्षाव्रत है।

3. भोगोपभोग परिमाण

आवश्यके वस्तुयोगः, शेषेषु गृहिसंयमः।
सीमा भोगोपभोगानां, सुशिक्षाव्रतधारणम्।।83।।

अर्थ :- आवश्यक होने पर वस्तु का योग और शेष पदार्थों में संयम हो। इस प्रकार भोगोपभोगों की सीमारूप शिक्षाव्रत धारण करना है। यह तीसरा शिक्षाव्रत है।

4. अतिथिसंविभाग

मुन्यादिसत्पात्राणां, ददीताहारमौषधम्।
वसति शास्त्रादिदो हर्षेत्, संविभागप्रियोऽतिथौ।।84।।

अर्थ :- मुनि आदि सत्पात्रों के लिए आहार, औषध, वसतिका और शास्त्र आदि का दान देने वाला, अतिथि के विषय में संविभागरुचितावाला होकर हर्षित होता है। यह चतुर्थ शिक्षाव्रत है।

चार प्रकार का दान

1. आहार

प्रतिग्रहादि भक्तितः, सप्तगुणसमन्वितम् ।
भुक्त्यादौ सद्-विधिर्द्रव्य- दातृ-पात्र-विशेषतः।।85।।

अर्थ :- पात्र को अपने द्वार पर आता हुआ देखकर अथवा मार्ग पर लाकर (अन्यत्र जाते हुए को अपने घर का मार्ग दिखाते हुए लाकर) नमोस्तु, तिष्ठ तिष्ठ आदि

कहकर प्रतिग्रह आदि भक्तियों के साथ सात गुणों से युक्त होकर विधि, द्रव्य, दाता और पात्र के वैशिष्ट्य के साथ भोजन दान आदि देना आहार दान है।

2. औषधि दान

कर्मोदयवशाज्जात- रोगस्य शान्तये भृशम्।
युक्त्या सदौषधेर्दानं, रुक्प्रशमाय दीयताम्।।86।।

अर्थ :- कर्मोदय-जन्य रोग की शान्ति के लिए बार-बार औषधि का दान दिया जाता है जिससे रोग शान्त हो जाये। यह औषध-दान कहा गया है।

3. शास्त्रोपकरण दान

ज्ञान-संयम-वृद्ध्यर्थं, शास्त्रोपकरणे तथा।
दीयन्ते सद्भिः पात्राणां, तत्फलं भोग-भूमिकृत्।।87।।

अर्थ :- सुपात्रों के ज्ञान और संयम की वृद्धि के लिए शास्त्र और उपकरण दिये जाते हैं। इसका फल भोगभूमि प्राप्त होना कहा गया है।

4. वसतिका दान

वासो वसतिकावासः, तद्दानमपि दीयते।
मुन्यादिभ्यो गृहस्थैर्यद्, धर्म-तीर्थ-प्रवर्तने।।88।।

अर्थ :- सन्तों के निवास हेतु वसतिवास देना चाहिए। गृहस्थों के द्वारा मुनि आदि के लिए दिया गया वसतिका दान धर्मतीर्थ-प्रवर्तन में कारण है।

छह आवश्यक

1. देवपूजा

जलगन्धाक्षतैः पुष्पैश्- चरु-दीप-धूपैर्फलैः।
अर्घ्यावलीं ददन्नर्घ्यं, 'जिनार्चा' कथ्यते बुधैः।।89।।

अर्थ :- जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल और अर्घ्यावली देते हुए पूजा करना जिन पूजा है - ऐसा विद्वानों ने कहा है।

2. गुरूपासना

'गुरुभक्ति'र्विधातव्या, मनोवाक्कायकर्मभिः।
अज्ञानध्वान्तनाशार्थ- मिहामुत्र सुखाय च।।90।।

अर्थ :- अज्ञानरूपी अन्धकार के नाश के लिए, इस लोक और पर लोक में सुख के लिए, मन-वचन-काय से गुरु की भक्ति करनी चाहिए।

3. स्वाध्यायः

वाचना पृच्छनाऽऽम्नायोऽनुप्रेक्षा धर्मदेशना।
'स्वाध्यायः' पंचधा ज्ञेयो, जीवानां ज्ञानदायकः।।91।।

अर्थ :- वाचना, पृच्छना, आम्नाय, अनुप्रेक्षा और धर्मोपदेश -ये सब स्वाध्याय के पाँच भेद हैं। इन्हें समझकर वाचना आदि (स्वाध्याय) करने पर ये जीवों को ये ज्ञानप्रद हो जाते हैं।

4. संयम

विषयेभ्यो निवृत्तिर्या, सेन्द्रियसंयमो मतः।
'संयमो' प्राणिरक्षायै, द्विविधः संयमो हि सः।।92।।

अर्थ :- जो विषयों से निवृत्ति है वह इन्द्रिय संयम है, और प्राणियों की रक्षा के लिए जो संयम है वह दूसरा (अर्थात् प्राणिसंयम) है। इस प्रकार संयम दो प्रकार का है।

5. तप

इच्छारोधस्तपो ज्ञेयं, 'तपः' निर्जरकारणम्।
प्रायश्चित्तादिरन्तः स्यु, बाह्यमनशनादि च।।93।।

अर्थ :- इच्छाओं का निरोध तप है, वह निर्जरा का कारण है। प्रायश्चित्त आदि अन्तरंग तप है और अनशन आदि बाह्य तप है।

6. दान

सर्वलोकान् वशीकर्तुं, 'दानं' प्रथमकारणम्।
स्वपरयोरुपकाराय, हेतुः कुलप्रकाशकम्।।94।।

अर्थ :- सभी जीवों को वश में करने के लिए प्रथम उपाय (कारण) दान है। यह दान स्वयं के और पर के उपकार के लिए होता है और दाता के कुल और जाति को विख्यात करता है।

दाता के सात गुण

श्रद्धा सत्त्वं तुष्टिर्भक्तिः, क्षमा ज्ञान-मलुब्धता।

सप्तैते हि गुणा यस्मिन्, स दाता वै प्रशस्यते।।95।।

अर्थ :- श्रद्धा, सत्त्व, तुष्टि, भक्ति, क्षमा ज्ञान, और अलुब्धता -ये 7 गुण दाता में होने चाहिए।

1. श्रद्धा

पापनाश-समर्था या, विनाशाय दरिद्रताम्।
पात्राय पुण्यदा या च, 'श्रद्धेति' ते वदन्ति ताम्।।96।।

अर्थ :- पापनाश और दरिद्रता के विनाश के लिए समर्थ और पात्र के लिए पुण्यप्रद जो गुण है वह श्रद्धा है - ऐसा श्रद्धालु जन कहते हैं।

2. सत्त्व

आत्मकष्टेऽपि यस्तृप्त-ममृतैरिव मन्यते।
पात्रोपकारतो दानं, दातुः 'सत्त्वं' तदुच्यते।।97।।

अर्थ :- स्वयं के कष्ट में भी जो अमृतपान से सन्तुष्ट जैसा मानते हैं और पात्र के उपकार के लिए दान देते हैं, यह दाता का सत्त्व गुण है।

3. तुष्टि

यथा चन्द्रोदये जाते, वृद्धिं याति पयोनिधिः।
सतां हृदयतोषाब्धिर्- मुनिश्चन्द्रोदये तथा।।98।।

अर्थ :- जिस प्रकार चन्द्रमा के उदित होने पर समुद्र वृद्धि को प्राप्त होता है उसी प्रकार मुनि संघ चन्द्रमा के आगमन पर जीवों के हृदय में हर्ष का सागर उमड़ता है उसे तुष्टि गुण कहा है।

4. भक्ति

आप्तागमे तपोधनौ, ज्ञान-ध्यान-परायणः।
शुद्धसद्भावसंयुक्तो- ऽनुरागो भक्तिर्विशद।।99।।

अर्थ :- आप्त, आगम और गुरु के विषय में ज्ञान-ध्यान-परायण शुद्धभाव वाला अनुराग गुण भक्ति है।

5. क्षमा

क्रोधोत्पत्ति हेतुं प्राप्ते, बाह्ये साक्षा–दनेकधा।
न करोति किंचित् क्रोधं, सः क्षमा धर्म धारकाः।।100।।

अर्थ :- बाह्य में क्रोधोत्पत्ति के साक्षात् अनेक कारण मिलने पर भी जो क्रोध नहीं करता है उसके क्षमा गुण होता है अर्थात् वह क्षमा गुण का धारी होता है।

6. ज्ञान

न दाताऽपेक्षते बुद्धि- प्रभृतीनि फलानि तु।
जिन-शासन-वृद्ध्यै स्याद्, ज्ञानं दातुर्गुणोत्तमः।।101।।

अर्थ :- दाता बुद्धि आदि फल की इच्छा नहीं करता, वह तो जिनशासन की उन्नति के लिए दान देता है। ऐसा जानने वाले का ज्ञानगुण उत्तम गुण है।

7. अलोभ

पात्रस्य प्रकृतिं बुद्ध्वा, बल देशा वगम्य च।
त्रिरत्नमेधकं दान- मलोभो स दातुर्गुणः।।102।।

अर्थ :- पात्र की प्रकृति, बल और देश को समझ कर रत्नत्रय वर्द्धक को ही दाता समझता है कि यह दान है। दाता बुद्धि आदि फलों की इच्छा नहीं करता। परन्तु जिनशासन की बुद्धि की अपेक्षा करता है वह दाता का अलुब्धता (अनपेक्षा) श्रेष्ठ गुण है। यह गुण दाता का गुण है।

श्रेष्ठ दाता

गुणाः श्रद्धाद्यालोभान्ता गृहस्थमध्यासते यदि।
नूनं श्रेष्ठो गृही स स्याद् लोके सैव प्रशस्यते ।।103।।

अर्थ :- श्रद्धा, सत्त्व, तुष्टि, भक्ति, क्षमा, ज्ञान, अलोभ, जिसमें ये सात गुण हों, वह दाता श्रेष्ठ है। उसकी लोक में प्रशंसा होती है।

बारह भावनाएँ

1. अनित्य भावना

न शाश्वतं शरीराणि, न बन्धु-बान्धवस्तथा।
न गेहाश्च धनं धान्यं, जीवनं जलबिन्दुवत्।।104।।

अर्थ :- शरीर शाश्वत नहीं है, बन्धु-बान्धव भी शाश्वत नहीं हैं और उसी प्रकार गृह, धन-धान्य भी शाश्वत नहीं हैं; जीवन तो जल की बूँद के समान है। यह अनित्य भावना है।

2. अशरण भावना

गोऽश्वरथसैन्यानि, मणि-मन्त्रे तन्त्रौषधी।
कोऽपि न शरणं लोके, पितरौ सुत-बान्धवः।।105।।

अर्थ :- गोधन, अश्व-रथ-सेना आदि सैन्य सामर्थ्य, मणि, मन्त्र, तन्त्र और औषध आदि दैवीय उपाय, माता-

पिता, पुत्र और बन्धु (कुटुम्बी) जन -इनमें से लोक में कोई भी शरण नहीं है। यह अशरण भावना है।

3. संसार भावना

द्रव्ये क्षेत्रे तथा काले, भवे भावे विशेषतः।
दुःखसंकीर्णसंसारः, पञ्चधेति प्रपञ्चितः॥106॥

अर्थ :- द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव में विशेषताएँ होने से यह दुःख से व्याप्त संसार पाँच प्रकार का है। यह संसार भावना है।

4. एकत्व भावना

वियोगे मरणे वाऽथ, जीवजनिसंयोगयोः।
सुख-दुःख-विधौ यस्य, न कोप्यस्ति सहायकः॥107॥

अर्थ :- जीव को ऐसा समझना चाहिए कि जन्म-मरण, संयोग-वियोग और सुख दुःख रूप कर्म के विषय में उसका सहायक कोई नहीं होता। यह एकत्व भावना है।

5. अन्यत्व भावना

अन्यत्वमेव देहेन, यत्र देहो न स्याद्दृशम्।
कणिकाऽपि सार्धं नो चेद्, बहिरंगो कुतो भवेत् ॥108॥

अर्थ :- देह से जीव का अन्यत्व ही है क्योंकि शरीर तो जीव का साथ कभी नहीं देता (जो कि दूध और पानी जैसा मिला हुआ है) तब जो बाह्य पदार्थ है उनमें से एक कण भी जीव का कैसे हो सकता है। यह अन्यत्व भावना है।

6. अशुचि भावना

देहे कृमि-कुलाकीर्णे, रुजाक्रान्तेऽशुचेर्गृहे।
प्रस्रवन्नवभिः द्वारै- दुर्गन्धादि निरन्तरम्।।109।।

अर्थ :- कृमिसमूहों से भरे हुए इस शरीर में रोगाक्रान्त अशुचिता के घर में नौ द्वारों से सदा स्रवित दुर्गन्धादि तो अशुचि ही है। यह अशुचि भावना है।

7. आस्रव भावना

कायवाङ्मनसां कर्म, योग इत्यभिधीयते।
आस्रवः प्रकृतीनां स, कथितः परमेश्वरैः।।110।।

अर्थ :- शरीर, वाणी और मन के कर्म को योग कहते हैं। जिनेन्द्र भगवन्तों ने इसे आस्रव कहा है। यह आस्रव भावना है।

8. संवर भावना

कर्मास्रवनिरोधो य, प्रहरीव बहिर्जनान् ।
पिधत्ते राजद्वारुक्तो, विचारचतुराननैः।।111।।

अर्थ :- बाहरी व्यक्तियों को प्रहरी के समान जो राजद्वार को बन्द कर देता है, उसे विचारशील जनों के द्वारा कर्मास्रव निरोध (संवर) कहा गया है। यह संवर भावना है।

9. निर्जरा भावना

तपो जृणाति कर्माणि, कथ्यते निर्जरा जिनैः।
विशुद्ध्यति यथा वह्नौ, सदोषमपि कांचनम्।।112।।

अर्थ :- तप कर्मों को खिरा देता है, जिनेन्द्र देव इसे निर्जरा कहते हैं, इससे शुद्धि होती है जैसे कि मलयुक्त स्वर्ण अग्नि में शुद्ध होता है। यह निर्जरा भावना है।

10. लोक भावना

षड्द्रव्यमयो लोकः, शाश्वतोऽकृत्रिमश्च सः।
साम्यभावं विना जीवो- ऽनादितो भ्राम्यति ततः।।113।।

अर्थ :- यह लोक छह द्रव्य युक्त है, शाश्वत है (अनादि निधन) इसे किसी ने बनाया नहीं है। इसमें अनादिकाल से यह जीव साम्यभाव के बिना भटक रहा है। यह लोक भावना है।

11. बोधिदुर्लभ भावना

महार्णवे यथा रत्नं, बोधिर्भवार्णवे तथा।
दुर्लभा च परिप्राप्तौ, विशदं कथ्यते बुधैः।।114।।

अर्थ :- विद्वज्जनों ने स्पष्ट कहा है कि जैसे महासमुद्र में रत्न प्राप्त करना दुर्लभ है, वैसे ही संसारसमुद्र में ज्ञान की परिप्राप्ति दुर्लभ है। यह बोधिदुर्लभ भावना है।

12. धर्म भावना

उत्तमक्षमादिधर्मो, धर्मो वस्तु-स्वभावतः।
रत्नत्रयस्वरूपश्च, धर्मो जीवन-रक्षणम्।।115।।

अर्थ :- उत्तम क्षमा आदि दशांग धर्म है, वस्तु का स्वभाव धर्म है, रत्नत्रय स्वरूप धर्म है और जीवरक्षा भी धर्म है। यह विचार करना धर्म भावना है।

बारह भावनाओं का फल

द्वादश भावनाऽऽप्त्यर्था- ऽनुप्रेक्षणं पुनः पुनः।
योगेऽनिर्वेद उत्साहः, संसृतिभोगे विरागता।।116।।

अर्थ :- इन बारह भावनाओं की प्राप्ति के लिए निरन्तर चिन्तन, योग में अनिर्वेद, उत्साह और संसार के भोगों से वैराग्य होना चाहिए।

ग्यारह प्रतिमाएँ

1. दर्शन प्रतिमा

अष्टमूलगुणोपेता, सप्तव्यसनवर्जिता।
केवलं शुद्धसम्यक्त्वं, प्रथमा प्रतिमा भवेत्।।117।।

अर्थ :- आठ मूलगुणपूर्वक, सात व्यसनों से रहित, केवल शुद्ध सम्यक्त्व होना, यह पहली दर्शन प्रतिमा है।

2. व्रत प्रतिमा

पञ्चाणुव्रत-संयुक्तं, गुणत्रयं तथैव च।
शिक्षाव्रतानि चत्वारि, प्रतिमा व्रतशालिनः।।118।।

अर्थ :- व्रतधारकों के पञ्चाणुव्रत से सहित तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत होते हैं। यह व्रत प्रतिमा दूसरी कही गयी है।

3. सामायिक प्रतिमा

रागद्वेष-परित्यागाद्, नाशात् सावद्य-कर्मणाम्।

समता या तदाम्नाता , बुधैः सामायिकं व्रतम्।।119।।

अर्थ :- राग-द्वेष त्याग, सावद्य कर्म का त्याग होने से जो समभाव होता है उसे विद्वानों ने सामायिक प्रतिमा कहा है। यह तीसरी प्रतिमा है।

4. प्रोषधोपवास प्रतिमा

चतुष्पर्वं चतुर्भेदा-हारत्यागैक-लक्षणम्।
वदन्ति विदिताम्नायाः, प्रोषधव्रत-मुत्तमम्।।120।।

अर्थ :- चार पर्वों (दो अष्टमी तिथियों और दो चतुर्दशी तिथियों) में चार प्रकार के आहार के त्यागरूप लक्षण वाला उत्तम व्रत प्रोषधोपवास है -ऐसा परम्परा-गुरुओं ने कहा है। यह चौथी प्रोषधोपवास प्रतिमा कही गयी है।

5. सचित्तत्याग प्रतिमा

कन्दं बीजं फलं पत्रं, प्रवालं वार्यप्रासुकम्।
विवर्जनं दयावद्भिः, पञ्चमी प्रतिमा हि सा।।121।।

अर्थ :- कन्द, बीज, फल, पत्र, कोंपल, अप्रासुक जल का त्याग दयामूर्ति श्रावक करते हैं। यह सचित्तत्याग प्रतिमा पाँचवीं प्रतिमा है।

6. रात्रिभुक्ति-त्याग प्रतिमा

दिवसे मैथुन-त्यागं, कुरुते नवकोटितः।
भोजने रात्रौ विरती, रात्रिभुक्तिव्रतंधरः।।122।।

अर्थ :- दिन में नव कोटि से मैथुन का त्याग और रात्रि में भोजन का त्याग रात्रिभुक्तित्याग व्रत धारक करता

है। यह रात्रिभोजनत्याग प्रतिमा छठी श्रावक प्रतिमा है।

7. ब्रह्मचर्यव्रत प्रतिमा

यन् मैथुनस्मरोद्रेकस्- तदब्रह्मातिदुःखदम्।
तदभावाद् व्रतं सम्यक्, ब्रह्मचर्यमितीरितम्।।123।।

अर्थ :- जो मैथुनजनक काम की तीव्रता है, वह अब्रह्मभाव अत्यधिक दुःखकर है। उसके अभाव से सम्यक् ब्रह्मचर्य व्रत कहा गया है। यह सातवीं ब्रह्मचर्यव्रत प्रतिमा है।

8. आरम्भत्याग प्रतिमा

जातुचिज्जीविकाप्त्यर्था, निःसावद्यं करोत्यपि।
न कारयति कृष्यादि, त्रिधारम्भत्यग् हि सः।।124।।

अर्थ :- जो श्रावक जीविका प्राप्ति के लिए न तो पापयुक्त कृषि आदि स्वयं करता है और न करवाता है, वह कृत-कारित-अनुमोदन रूप त्रिधा आरम्भ का त्यागी होता है। वह सावद्य कार्य न करने से निःसावद्य हो जाता है। यह आठवीं आरम्भत्याग प्रतिमा है।

9. परिग्रहत्याग प्रतिमा

धन-धान्यादि-वस्तूनां, परिमाणं ततोऽधिके।
यत् त्रिधा निष्प्रहत्वं तत्, स्यादपरिग्रहव्रतम्।।125।।

अर्थ :- धन-धान्य आदि का परिमाण करना, उससे अधिक में जो तीन प्रकार (मन-वचन-काय) से निष्पृह भाव होता है वह परिग्रहत्याग प्रतिमा नौवीं प्रतिमा है।

10. अनुमतित्याग प्रतिमा

परिग्रहेऽथवाऽऽरम्भे, यो नानुमन्यते त्रिधा।
तस्यात्मरत-प्रध्यः स्या- दनुमतिस्त्यागस्त्रिधा।।126।।

अर्थ :- जो न तो आरम्भ के कार्यों में और न ही परिग्रह के विषय में अनुमति देता हो उस आत्मलीन प्रधी के तीन प्रकार से अनुमतित्याग प्रतिमा होती है। यह दसवीं प्रतिमा है।

11. ग्यारहवीं उद्दिष्टत्याग प्रतिमा का पहला भेद

खण्डैकवस्त्र-कौपीनः, पटादिप्रतिलेखनः।
पात्रेऽथवा करे भुंक्ते, उपविष्ट एकाशने।।127।।

अर्थ :- एक खण्डवस्त्र, लंगोटी, पिच्छी अथवा कपड़े से परिमार्जन करने वाला श्रावक, नीचे बैठकर या तो पात्र में भोजन करता है या हाथ में करता है। यह ग्यारहवीं उद्दिष्टत्याग प्रतिमा का पहला भेद है, इसके धारक को क्षुल्लक/क्षुल्लिका कहा जाता है।

11. ग्यारहवीं उद्दिष्टत्याग प्रतिमा का दूसरा भेद

पाणि पात्र्येककौपीनः सपिञ्छः केशलुञ्चकः।
उत्कृष्टतरोऽसौ भूयाद्, भोजनादौ तपस्विवत्।।128।।

अर्थ :- पाणिपात्र में भोजन करने वाला, एक लंगोटी वाला, पिच्छी धारण करने वाला, केशलुञ्च करने वाला (सामायिक आदि सहित), तपस्विवत् आचरण करने वाला उद्दिष्टत्याग प्रतिमा का धारक होता है। यह ग्यारहवीं उद्दिष्टत्याग प्रतिमा का दूसरा भेद है, इसके धारक को एलक कहा जाता है।

जलगालन की विशेषता (विधि)

द्वि-मुहूर्तात् परं वारि- गालनं क्रियते बुधैः।
शिष्टन्यासोऽपरत्रं च, नार्च्या कुवस्त्रगालनम्।।129।।

अर्थ :- पानी छान कर उपयोग में लेने रूप जलगालनव्रत में दो मुहूर्त से आगे पानी को छान लेना चाहिए। अवशिष्ट (जीवानी) को स्रोत पर डालना चाहिए। गलित वस्त्र या अप्रशस्त वस्त्र पानी छानने के काम में नहीं लेना चाहिए।

विमर्श:-श्रावक के व्रतादि के नाम-निर्देश में –

तपः स द्वादशभेदं, दानं च स्याच्चतुर्विधम्।
दिवा भुक्तिः समत्वं च, जलगालनमथापि च।

-इस श्लोक में आए हुए रात्रिभोजन-त्याग (दिवा-भुक्ति) समताभाव (समत्व) और जलगालन में विशेषता का संकेत यहाँ इन श्लोकों में किया गया है।

समता भाव

त्रस-स्थावर-जीवेषु, कृपाकान्ते मनो-गिरे।
राग-द्वेष-मदैर्हीनः, धरते समतां सुधीः।।130।।

अर्थ :- त्रस-स्थावर जीवों पर कृपा से भरे हुए मन और वाणी का प्रयोग करते हुए राग-द्वेष और मद से रहित सुबुद्धि श्रावक समता धारण करता है।

रात्रिभुक्ति-त्याग की विशेषता

रात्रिभुक्तित्यग् रात्रौ, दिवाद्यन्तमुहूर्तयोः।
अहिंसाव्रतधृत्त्यज्यात्, सममाहारचतुष्टयम्।।131।।

अर्थ :- रात्रिभोजन-त्यागी को चाहिए कि वह दिन के और रात्रि के आदि के मुहूर्त (दो घड़ी अर्थात् 48 मिनिट) और अन्त के मुहूर्त को छोड़कर सम्यक् आहार-चतुष्टय का ग्रहण करे। अहिंसाव्रत का धारक ऐसा ही करता है।

उपसंहार

क्रियासारसुग्रन्थोयं, श्रावकाचारदेशकः ।
विशदसागरेणासौ, प्रस्तुतः संविशोधकः।132।।

अर्थ :- श्रावकों के आचार का उपदेश देने वाला श्रावक-क्रियासार नामक यह ग्रन्थ आचार्य विशदसागर ने श्रावकों के सभी दोषों के परिमार्जन के लिए प्रस्तुत किया है।

।। इति अष्टोत्तरशतगुणविभूषितसमाधिस्थ-श्रीमद्विरागसागरशिष्य-श्रीमदाचार्यविशदसागरप्रणीतः त्रिपञ्चाशत्क्रियामुख्यत्त्वेनव्याख्यानात्मकः श्रावक-क्रियासारग्रन्थः पूर्णतां गतः।।

।। इसप्रकार 108 श्रीमद्विरागसागर के शिष्य श्रीमदाचार्य विशदसागर विरचित श्रावकों की त्रेपन क्रियाओं का मुख्यता से विवेचन करने वाला यह क्रियासार नामक ग्रंथ पूर्ण हुआ।।

सद्धर्म ध्यान कुशलः, शिव पंथ नेता,
आचार पंच निरता, निज अक्ष जेता।
सौख्याकरं गुरुवरं निर्ग्रन्थ रूपं,
श्री विराग सिन्धु गुरवे विशदं नमामि।।